FACTS AND FANCIES

HARISINGH GOUR

FACTS AND FANCIES

BEING

STUDIES IN POPULAR PROBLEMS

FACTS AND FANCIES

BEING

STUDIES IN POPULAR PROBLEMS

BY

HARI SINGH GOUR

Edited by

Laxmi Pandey

ANUUGYA

Warning
No part of this book may be reproduced or utilized in any form or by any means electronic or mechanical including photo-copying, recording or any information or storage and retrieval system without the written permission of the publisher and Editor.

© Publisher

First Anuugya Edition 2024

ISBN 978-81-19878-21-5

Published by
Anuugya Books
1/10206, Lane No. 1E, West Gorakh Park, Shahdara, Delhi-110032
e-mail: anuugyabooks@gmail.com • salesanuugyabooks@gmail.com
Ph. : 7291920186, 9350809192 • www.anuugyabooks.com

Cover Design
Asrar Ahmed

Printed in
Arpit Printographers

FACTS AND FANCIES : Being Studies in Popular Problems (Essays)
by ***Dr. Harisingh Gour*** *edited by* ***Dr. Laxmi Pandey***

पूर्व संस्करण से

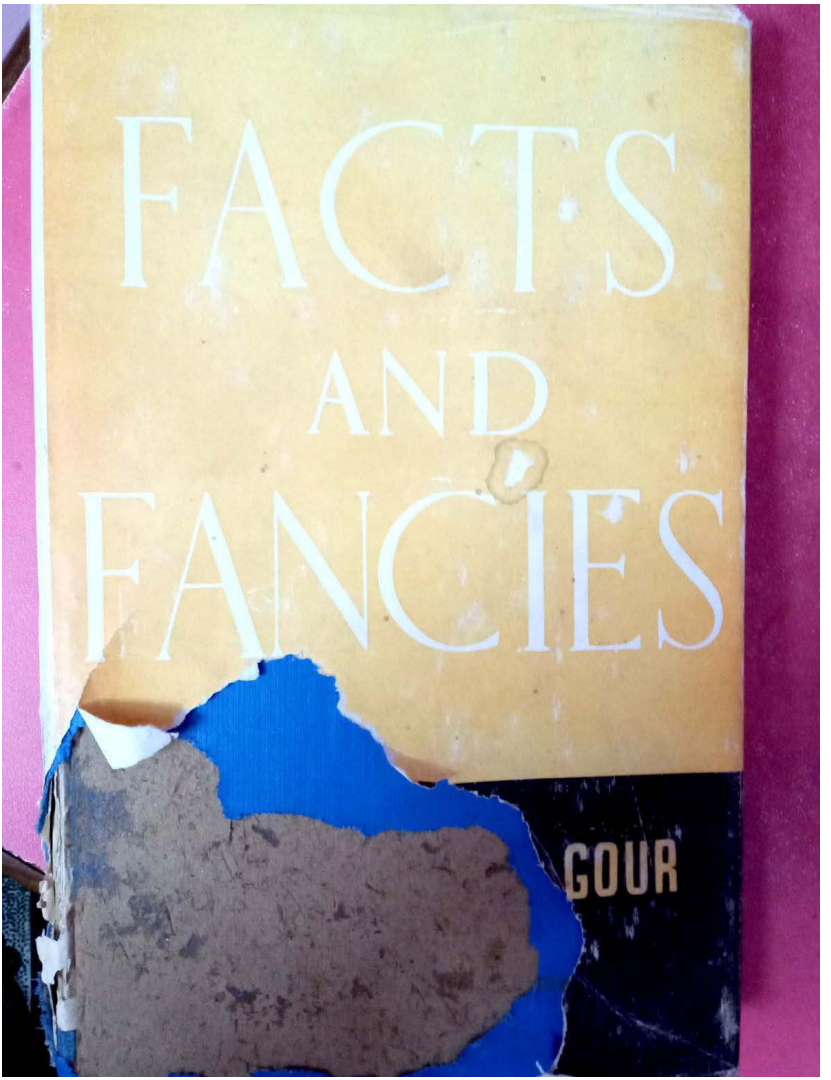

पूर्व संस्करण से 1st फ्लैप

The pleasures of life are meagre and poor, and they are counteracted by wanton credulity, ignorance and superstition, which may vary in different countries, but their root cause remains similar, if not identical. How to eliminate these defects has engaged the attention of many people, but amongst them, the author of this work internationally described as possessing "razor-like mind and a rapier-like tongue," has throughout his life tried to reform human life by his thought and action.

In this work, his counter-action is published in the form of articles on various important subjects which have their educative and corrective value. They tend to remove the over-grown crust from the human mind, and liberate it to the lasting good of the people, and of those who study and practise the reforms therein indicated.

पूर्व संस्करण से

FACTS AND FANCIES

BEING

STUDIES IN POPULAR PROBLEMS

BY

Sir HARI SINGH GOUR,
M.A., D.Sc., D. Litt., D. C. L., LL. D.

SAUGOR:
THE SAUGOR BOOK DEPOT,
(Publishers to the University)
1948

पूर्व संस्करण से

Printed by M.L. Sabharwall at the Roxy Press, New Delhi

निवेदन–

दायित्व पूर्ति का प्रयास

'Facts & Fancies' डॉ. हरीसिंह गौर का निबन्ध संग्रह है। इसमें 36 निबन्ध हैं। यह ग्रंथ 1948 में गौर साहब के देहावसान के कुछ समय पूर्व प्रकाशित हुआ था। 75 वर्ष बाद अब 2024 में यह नये रूप में प्रकाशित हो रहा है। गौर साहब के विधि सम्बन्धी ग्रंथ तो प्रसिद्ध हैं ही, उनके दर्शन और अंग्रेजी साहित्य के ग्रंथों के साथ जब हम उनके इन 36 निबन्धों को पढ़ते हैं। इन पर चिन्तन करते हैं तो पता चलता है कि भारत की पराधीनता के युग में भी अंग्रेज सरकार गौर साहब की विद्वता की कायल होकर उन्हें 'सर' की उपाधि से विभूषित करते हुए गौरवान्वित क्यों हुई होगी। ज्ञान का सागर होना ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि उस ज्ञान का लोकमंगल के लिए उपयोग करना, समाज में नवीन और युगानुकूल आवश्यक चेतना जागृत करना एक परिश्रम साध्य कर्म होता है, गौर साहब ने यह कार्य किया इसलिए 'सर' की उपाधि गौर साहब को पाकर स्वयं गौरवान्वित हुई। हर युग में सही और गलत, अच्छे और बुरे, भीरू और निर्भीक लोगों का समन्वय होता है। गौर साहब की विद्वता का सम्मान, उनके बहुमुखी बौद्धिक एवं संवेदनशील व्यक्तित्व को तत्कालीन सरकार द्वारा आदर दिया जाना आश्वस्त करता है।

'Facts & Fancies' के निबन्धों में विज्ञान-दर्शन-अध्यात्म और जीवन तथा समाज से सम्बद्ध चिन्तन है। राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मुद्दे हैं। शिक्षा-संस्कृति, राजनीति, अर्थनीति आदि पक्षों पर गहन विमर्श है। Dark World, Buddhism, Democracy, Communism, Is Life an Evil?, The Riddles of Life, The Pleasures of Life, Life in Japan, Life in Manchuria आदि वैविध्यपूर्ण निबन्धों का यह संग्रह अत्यन्त रोचक, पठनीय एवं संग्रहणीय है। हमारे लिए तो यह धरोहर ही है जिसमें गौर साहब के विचार रत्नों की तरह जगमग हैं।

इस ग्रंथ के Preface में गौर साहब ने इन निबन्धों की उपयोगिता एवं भूमिका पर प्रकाश डाला है। जो पृष्ठ 11 पर पढ़ा जा सकता है। भारतीय समाज का पिछड़ापन, गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वासी होना, स्वच्छता के संस्कारों से हीन होना, मानसिक-शारीरिक बीमारियों से ग्रस्त होना, भीरू होना गौर साहब को आंतरिक कष्ट देता था। उन्होंने इस ग्रंथ के माध्यम से एक ऐसा चिन्तन पथ प्रशस्त किया है जो भारतीय समाज को अंतरबाह्य से स्वस्थ-समृद्ध, सुव्यवस्थित-स्वच्छ और सुरक्षित

बनाए। यहाँ गौर साहब एक प्रकाश-स्तम्भ की तरह, आकाशदीप की तरह प्रतीत होते हैं। परिवर्तित होते समय-समाज और पर्यावरण के अनुसार हम गौर साहब की प्रेरक-नीति-परक शिक्षा को आत्मसात करें, यही हमारे दायित्व की पूर्ति होगी।

डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय में 'जवाहर लाल नेहरू पुस्तकालय' है जिसमें एक कक्ष 'गौर कक्ष' के नाम से जाना जाता है। इसमें गौर साहब का निजी पुस्तकालय है तथा उनका सम्पूर्ण साहित्य भी सुसज्जित एवं सुरक्षित है। विश्वविद्यालय के लम्बे-चौड़े परिसर में यह पुस्तकालय गौर साहब के प्रिय स्थलों में से एक है। इस पुस्तकालय के गौर कक्ष में उनकी अन्य पुस्तकों की तरह ही इस पुस्तक की भी फोटोकॉपी को बाइंड करके रखा गया है।

गौर साहब का हृदय सागर सा विशाल और गहन, मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण था। उसमें प्रेम की गंगा और ज्ञान की सरस्वती का अद्वैत था। उनके मातृभूमि के प्रति प्रेम और श्रद्धा की मिसाल यह विश्वविद्यालय है और वे तमाम कानून जो जनकल्याण के लिए, लोकमंगल के लिए उन्होंने बनाए और बनवाए।

इस पुस्तक के एक-एक शब्द को प्रूफ रीडिंग करते हुए बार-बार मैंने पढ़ा। यह मेरे लिए भावुकता के क्षण हैं और एक दायित्व की पूर्ति कर सकी, जैसा अनुभव मुझे रोमांचित भी कर रहा है। कुलपिता डॉ. गौर साहब जहाँ भी हों उनकी आत्मा सुखी हो, वे आश्वस्त हों ईश्वर से यही प्रार्थना करती हूँ।

साहित्यकार के लिए उसकी हर पुस्तक उसकी संतान की तरह होती है। अपनी संतान को जीवित, सुरक्षित देखकर उसे आत्मसंतोष की अपार अनुभूति होती है। देह नश्वर है, लेकिन आत्मा अजर-अमर होती है। इसलिए देह बदल भी गई हो तो भी गौर साहब की आत्मा इस सुख की अनुभूति अवश्य कर लेगी।

'सागर विश्वविद्यालय' की स्थापना 1946 में 18 जुलाई को हुई थी। इसके संस्थापक कुलपति डॉ. हरीसिंह गौर ने निजी धनराशि 2 करोड़ रुपयों का दान कर इस विश्वविद्यालय को स्थापित किया और दानवीर कहलाए। वे नहीं चाहते थे कि इस विश्वविद्यालय का नाम कभी बदला जाए किन्तु 1949 में गौर साहब के देहावसान के अनेक वर्षों बाद राजनैतिक दुराग्रहों के चलते इसका नाम डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय कर दिया गया। 2009 से पूर्व यह प्रादेशिक विश्वविद्यालय था उसके बाद यह केन्द्र सरकार के अधीन हो गया।

गौर साहब की किसी भी पुस्तक की मूल प्रति या पांडुलिपि मुझे इस पुस्तकालय में प्राप्त नहीं हुई। बाइंड करवा कर रखी गई पुस्तकें पुस्तकालय से बाहर नहीं ले जाई जा सकतीं, इसलिए शोधार्थी, सामान्य विद्यार्थी और पाठकों के लिए यह सुलभ नहीं है। इसी कारण अब तक इन पर शोध-कार्य नहीं हो सका। मन यह सोचकर बेचैन और उदास हो जाता है कि अगर यह फोटो कॉपी वाली प्रतियाँ भी फट जाएँ या

खो जाएँ तो क्या इस महान शिक्षाविद्, न्यायविद्, कानूनविद्, दार्शनिक, दानवीर, संवेदनशील मनुष्य और साहित्यकार का यह साहित्य खो जाएगा क्योंकि इस पुस्तकालय में यह जैसा और जिस रूप में है, बस यही है और कहीं नहीं, जबकि गौर साहब दिल्ली और नागपुर विश्वविद्यालयों के भी कुलपति रहे हैं।

यह तो निश्चित है कि जब तक यह पृथ्वी है, संसार है, जीवन है, हमारा भारत अमर रहेगा। भारत में बुंदेलखंड और उसमें स्थित यह शहर सागर भी अमर रहेगा। पीढ़ियाँ आएँगी, पढ़ेंगी और जाएँगी, पुरानी इमारतों की जगह नयी इमारतें बनेंगी लेकिन इन भौतिक परिवर्तनों के साथ डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय अमर रहेगा। तब, उनका साहित्य भी उनके नाम के साथ सुरक्षित होना चाहिए युगों तक इसे भी अमर होना चाहिए। अनेक निद्राहीन और बेचैन रातों के चिंतन-मनन के बाद यह निर्णय ले लिया कि अब और किसी से आशा-अपेक्षा और प्रतीक्षा नहीं... मैं स्वयं इसे पुनः प्रकाशित कराऊँगी। कानून की पुस्तकों की चिन्ता नहीं क्योंकि उनके अनेक संस्करण कानूनविदों द्वारा लाए जा चुके हैं। वे पुस्तकें उनके लिए मील का पत्थर हैं और हर क्षण उनका पथ-प्रशस्त करती हैं। केवल साहित्य समाज और दर्शन की पुस्तकों की चिन्ता है।

सामान्य जन हों या साहित्यकार उनकी धन-धरती की विरासत को सम्हालने वाले बहुत होते हैं किन्तु साहित्यकार की वास्तविक विरासत उसके साहित्य को सम्हालने का कार्य या तो उनके आत्मज करते हैं या मानस संतानें या कोई संस्था...। आत्मजों ने तो अब तक कुछ किया नहीं। संस्था यानी विश्वविद्यालय ने भी अब तक इसे फोटो कॉपी के रूप में ही सम्हाला है। वर्तमान में संस्थापक कुलपति डॉ. हरीसिंह गौर की प्रतिनिधि के रूप में प्रो. नीलिमा गुप्ता कुलपति के पद पर विराजमान हैं। वे अत्यन्त विदुषी, पारखी दृष्टि सम्पन्न, परिश्रमी, धैर्यवान, सत्य निष्ठावान, श्रेष्ठ संवेदनशील मनुष्य और प्रशासक हैं। उन्होंने गौर साहित्य के प्रकाशन के सम्बन्ध में उत्साह प्रकट किया है लेकिन इस पद की अपनी व्यस्तताएँ हैं। क्या पता कब हो, हो कि न हो, अब और प्रतीक्षा नहीं। जीवन अगर नश्वर है तो मेरे जीवन का भी क्या भरोसा है। मैं भी तो गौर साहब की मानस संतान हूँ यह दायित्व मेरा भी है। फिर इस विश्वविद्यालय में अध्यापक होने के नाते इस संस्था की एक सदस्य हूँ तो संस्था की ओर से सौंपा गया अनकहा अघोषित दायित्व भी मान लूँ। यह सोचकर मैंने गौर साहब की छः पुस्तकों को सम्पादित कर पुनः प्रकाशित करने का बीड़ा उठाया। इस दायित्व पूर्ति के प्रयास में 'Random Rhymes', 'Stepping Westward', 'Seven Lives' के नए संस्करण प्रकाशित करवाने के बाद अब यह निबन्ध संग्रह 'Fact & Fancies' को भी प्रकाशित करवा रही हूँ। चूँकि मैं हिन्दी भाषा और साहित्य की अध्यापक हूँ। स्कूल में अंग्रेजी एक विषय के रूप में पढ़ी और अब तक

कुछ स्वाध्याय के चलते अंग्रेजी पढ़ने और समझने में बहुत अधिक परेशानी नहीं होती। गौर साहब का वैदुष्य विराट और गहन है। इस पुस्तक की प्रूफ रीडिंग (अशुद्धि शोधन) करते हुए मैंने संस्कृत लोकोक्ति 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' का परिपालन किया। सचेत और सतर्क रहते हुए सावधानी के साथ जो शब्द जो पंक्ति जैसी जहाँ है उसे वैसे ही और वहीं रखने का प्रयास किया है। इस पुस्तक के प्रथम बार प्रकाशित होने के समय इसका जो कवर, प्रकाशन का पहचान चिन्ह आदि थे, उन्हें भी सहेज दिया ताकि इसका मूल रूप भी बचा रहे।

अन्त में एक करबद्ध प्रार्थना है उस पीढ़ी से जो इस पुस्तक को आज से 40-50 वर्ष बाद देखेगी, पढ़ेगी। यह संस्करण 40-50 वर्ष तक तो चल सकता है उसके बाद जो पीढ़ी इसे देखे पढ़े वह तत्कालीन प्रशासन से निवेदन कर या स्वयं प्रयास कर (मेरी तरह) इसका नया संस्करण छपवा दे, प्रकाशित करवा दे और जिस तरह मैंने इस संस्करण में मूल पुस्तक के कवर, प्रकाशन का नाम-पहचान चिन्ह सहेजा है, वह भी सहेज दे उस संस्करण में। मैंने जो अगली पीढ़ी से यह प्रार्थना की है, इसे भी सहेज दे ताकि यह सिलसिला चलता रहे और गौर बब्बा, Our grandfather, कुलपिता गौर साहब के नाम के इस विश्वविद्यालय में उनकी भावनाओं और विचार दृष्टि से सम्पन्न-समृद्ध यह साहित्य भी अमरता का पथ तय करता रहे। मैं तब नहीं रहूँगी लेकिन उस प्रकाशनकर्ता के लिए मेरा शुभाशीष और मंगलकामनाएँ बनी रहेंगी।

पाठकों को यह प्रार्थना अजीब सी लगे, यह हो सकता है। लेकिन गौर साहब के साथ जिनका सत्य निष्ठा पूर्ण आत्मीय रिश्ता है, उन्हें यह गम्भीर दायित्व की पूर्ति की तरह ही लगेगा। अपना परिचय फ्लैप पर नहीं देना चाहती थी किन्तु प्रकाशन सामग्री की प्रामाणिकता और संपादक के उत्तरदायित्व की दृष्टि से यह देना आवश्यक लगा।

अनुज्ञा बुक्स दिल्ली के प्रकाशक सुधीर वत्स जी के प्रति जितनी कृतज्ञता व्यक्त करूँ कम है। उन्होंने मेरी इच्छा का मान रखते हुए गौर साहित्य के प्रकाशन की सहर्ष स्वीकृति दी। शुद्ध टंकण के लिए मनोज कुमार जी का परिश्रम सराहनीय है उन्हें हृदय से धन्यवाद देती हूँ। इस कार्य के दौरान प्रो. सुरेश आचार्य का प्रोत्साहन मानसिक संबल बना रहा, उन्हें प्रणाम निवेदन करती हूँ। आशा है पाठक मेरे प्रयास को सकारात्मकता के साथ स्वीकार करेंगे।

10.01.2024

लक्ष्मी पाण्डेय
9753207910

PREFACE

All sentient life is susceptible to its environments—regional, religious and social. These environments affect, modify and control human character and determine its relation to both the State and its peoples. The history of the world shows how man is susceptible to these influences, and how his character is modified and controlled by their impact upon the people. The history of Europe is a living example of such reactions to the ruling influences of men.

A democratic state becomes over-night converted to communism, and communism expands by its invisible force to other countries, widening its circle of influence which, in course of time, reacts upon the hegemony of power. The history of India for the last 3,000 years has been the history of human psychology modified and controlled by these influences. The foreign power in control of the country exploited it by visible and invisible means of controlling the masses. But the masses at large have not collectively reacted, except in very recent times. The combined influences of other forces, however, proved too much for their safety, security and general happiness, but in India the people at large have for ages remained static and unmoved by the change of power and its policy towards the people. The people's character is the resultant effect of these forces acting and reacting upon its life. Whether the Moghul or the British be in power, their object was to control the masses, and this control was achieved by force of arms, inculcations and the subtle influence of those who were amenable to their policy. They were rewarded or punished according to whether they became subservient or recalcitrant to the 'divine' will of the ruler.

In course of time, customs became established, and these, in

turn, gave rise to tradition and the sanctity of age. When once customs are formed and habits modified, the people do not go beyond them to seek their origin. They follow them by heredity and habit, and seek compliance with what they begin to treat as providential dispensation. A student of human psychology has to dig and see deeper than what he sees around him. He has to delve into the root cause of the various forms of social life, which he sees around him. He must dissect and discover the genetical sources of human character formed by tradition. If he finds that it is erroneous and devoid of truth, he becomes the apostle of social reform, and he in turn may propagate his belief amongst the few intelligentsia that follow him. An analytical thinking mind is necessary to understand the genesis of human character, and its repercussion upon contemporary life and its well-being.

The essays in this work are intended to serve that purpose. They go into the root cause of the various institutions: regional religious, social and moral; and crystallize the result of prolonged study and research. It is not expected that the masses will readily understand or follow these deductions, but what is expected is that the race of intelligentsia may begin to understand them and, through understanding, reform their own lives and the lives of their fellow-creatures who live in their midst.

Of all inculcations of climatic, regional and religious faiths, the most important is the approach of science and logic. These two, if properly understood and applied, would convince the people of what accumulated dogmas they have enshrined in their own minds, and how necessary it is to purge them therefrom. A modern progressive state of people must possess this faculty of mental analysis, research and absorption. These essays are intended to serve as a help to this end. They have examined all questions through the medium of truth, throwing the search-light of reason and logic on all institutions, however ancient and however sacred.

When the human mind is cleared of cant and hypocrisy, it will begin to shine and illuminate the static mentality of the common

people. It will have a far-reaching effect in modifying and uplifting human character, and its reaction upon the State would then begin to fulminate and contribute to the growth of human happiness and human progress.

These essays are not intended to be the last word on any subject, but they have their relative value in approaching the question, in the humble spirit of re-awakening the human mind to the proper understanding of the various problems, which have become conglomerated from the impact of history. There is no dialectical approach to any of the questions raised in the ensuing pages, but there is a fervent hope that these questions may re-awake and kindle the desire to reach "the truth, the whole truth and nothing but the truth," in the cataclysmic confusion of life.

University House, Saugor, CP **H.S.G.**
1st September, 1948

Contents

Preface 13

Part 1

1. Science's Survey of the Universe 19
2. Dark World 40
3. Religion : Its Use and Abuse 46
4. The Truth About Religion 57
5. Religion and Its Force on Man 68
6. Buddhism and World Unity 70
7. Buddhism 74
8. Avaunt Superstition 77
9. The World and the Next War 80
10. Problems of World Peace 85
11. Democracy and Communism 90
12. A Geographical Analysis of World Peace 101
13. Europe Before and After the War 104

Part 2

14. The Romans at Work and Play 124
15. Life in Japan 133
16. Life in Manchuria 136
17. Dark India 139
18. The Tragedy of India 146
19. Truth About India 154
20. India Old and New 166
21. India and England 178

22. Should English Quit India? 183
23. The Label and the Goods 195
24. Our Only Hope 199
25. The World of Pakistans 208

Part 3

26. The British Pledge for India's Independence 216
27. The British Pledge and After 223
28. The Pledge and its Sequel 232
29. A Speech in the Constituent Assembly in Support of the Resolution of Pandit Jawaharlal Nehru 241

Part 4

30. Shakespeare : His Life and Work 247
31. The Use and Abuse of Marriage 259
32. Is Life an Evil? 265
33. The Riddle of Life 269
34. The Pleasures of Life 276
35. The Art of Expression 288
36. Of Character 298